भारतीय कला में भारतीय शास्त्रों का अवलोकन

डॉ0 वन्दना शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर
चित्रकला विभाग
डी0जे0 कॉलेज, बड़ौत, बागपत, उ0प्र0

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 29.04.26
Approved: 27.06.26

डॉ0 वन्दना शर्मा

भारतीय कला में भारतीय शास्त्रों का अवलोकन

Vol. XVII, Sp. Issue June.2026
Article No.15, Pg. 122-127

Similarity Check: 07%

Online available at
https://anubooks.com/special-issues?url=jgv-si-rbd-bijnor-june-2026

DOI: *https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI06.015*

सारांश

भारतीय कला का आधार भारतीय शास्त्र हैं भारतीय धर्मशास्त्र भारतीय कला की आत्मा है आज के विज्ञान वादी तथा भौतिक युग में चिरस्थाई शांति व आनंद धर्म शास्त्रों के माध्यम से ही है आज परिवर्तनशील वातावरण में भी कलाकारों ने अपनी प्राचीन कला और संस्कृति को जीवित रखा है उन्होंने प्राचीन परंपरागत चित्रों के विषय के आधार पर चित्रों को नए ढंग से प्रस्तुतीकरण करके उन्हें आधुनिक रूप दिया है चित्रों के विषय पौराणिक होते हुए भी आज के वैज्ञानिक युग में उनका उतना ही महत्व है कलाकारों ने हिंदू धर्म के देवी देवताओं के साथ–साथ मांगलिक कॉन को अपनी कला में अर्थ सहित उतारने का प्रयास किया है उदाहरण अर्थ कलाकारों की श्रृंखला में एक प्रसिद्ध कलाकार श्री राम किशोर यादव जी के चित्र गणेश व बारह राशियाँ रामायण की घटनाओं का संयोजन किया है भारतीय कला हमारी परंपरा वह प्राचीन संस्कृति का दर्पण है प्राचीन से आधुनिक तक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आज भी कल की ने हमारे धर्मशास्त्र ही हैं।

मुख्य शब्द

भारतीय कला, धर्मशास्त्र, धर्म, संस्कृतिए प्राचीनए कलाकार

**This article has been peer-reviewed by the Review Committee of JGV.*

https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI06.015

भारतीय कला मे भारतीय शास्त्रो की रचना जिस दृष्टि से हुई है उसमे 'मनसा वाचा कर्मणा' के अतिरिक्त चौथी वृत्ति 'चक्षुषा' भी समाहित है जिसे 'विदुर नीति' ने स्पष्टतः उल्लिखित किया है–

''चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधिधिम्''[1]

यही नही विदुर ने 'चक्षुषानुपिवान्निव' कहकर ऑख से पीने का भाव भी व्यक्त किया है। भारतीय कला की दृष्टि मे ऐसी ही प्रवृत्ति से पहचानी जा सकती है। कदाचित् रामकिशोर ने स्वतः ही ऐसी धारणा अपनाकर इन रचानाओं का प्रणयन किया है। वे मानते है कि किसी भी कलाकृति का चाक्षुष दर्शन ही उसके ज्ञान के लिए आवश्यक होता है। भारतीय कला 'ज्ञान' से 'प्रज्ञा' और 'प्रत्याभिज्ञा' तक जाती है। इसलिए कहा गया है कि 'विश्रान्ति' से उसे परितोष नही होता। वह परा कोटि तक जाने मे जीवन की सार्थकता समझती है।[2]

भारतीय कलाकारों ने पूरी तन्मयता और प्रज्ञात्मक बोध का परिचय देते हुए भारतीय शास्त्रो मे धार्मिक, पौराणिक, आध्यात्मिक और सामाजिक आदि विषयों को कलाकृतियों के माध्यम से मार्मिक निरूपण किया है। शास्त्रो के मनन और अनुशीलन से ही इनकी अन्वेषण प्रक्रिया निरन्तर जागरूक रही है।

भारतीय धर्मशास्त्र भारत की आत्मा माने जाते है। प्रत्येक देश किसी न किसी बात में अग्रणी रहता है, जिसके कारण वह अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर पाया जाता है। यह उसकी भौतिक उपलब्धियों से सम्बन्धित चर्चा है क्योंकि आज के विज्ञानवादी तथा भौतिकवादी युग मे केवल मात्र भौतिक उपलब्धियों को ही सार माना गया है जो चिरस्थाई शान्ति व आनन्द प्रदान नही कर सकती। इन सब भौतिक उपलब्धियों से दूर भारतवर्श अपनी प्राचीन सभ्यता व संस्कृति तथा नैतिक आदर्शो को अपनें धर्मशास्त्र के माध्यम से संजोये प्रत्येक देश पर अपनी धर्म ध्वजा फहरा पाने मे सक्षम है। यदि यहाँ धर्मशास्त्र न होते तो सम्भवतः भारत धर्म प्राण देश न कहला पाता।

रामायण, महाभारत तथा पौराणिक गाथाओ के आधार पर प्राचीन भारतीय कला संस्कार का बेजोड़ नमूना है। आज हमारी भारतीयता इसी कला रूप मे ही जीवित है। विदेशों मे कला का प्रतिनिधित्व तथा भारतीयता की अलग से पहचान कराई है तो इसी कला ने, जिसके अब अवशेष मात्र रह गये है। स्वंय भारतीय अपनी कला और संस्कृति जिससे संसार मे इतना मान तथा कला जगत मे उच्च स्थान बनाया है।, विमुख होते जा रहे है और पाश्चात्य आधुनिक कला की ओर दिनों दिन अग्रसर हो रहे है।

समय के अनुसार परिवर्तन स्वाभाविक है। आश्चर्य नही कि आज के कलाकार प्राचीन परम्परागत कला को छोड़ आधुनिक कला की दौड मे दौडे जा रहे है यहा तक मै भी इस तथ्य से सहमत हूँ कि परिवर्तन अवश्य लाया जाए क्योकि हर व्यक्ति सम्भावतः कुछ नया देखना चाहता है, नया पहनना चाहता है, नया खाना चाहता है इत्यादि। एक ही वस्तु के निरन्तर सेवन से मन ऊब जाता है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि हमारी कला और संस्कृति उच्च कोटि की है, इसीलिए इसे जीवित रखने के लिए वही शैली, वही आकार, वही कलात्मक अभिव्यक्ति इस परिवर्तनशील वातावरण मे रूचि व आकर्षण बनाए रखने मे समर्थ नही हो सकती। परिवर्तन भी जरूरी है और अपनी प्राचीन कला और संस्कृति को जीवित भी रखना जरूरी है। इन्ही दो बातो से प्रेरित होकर कलाकारो ने अपने चित्रो मे बहुत प्रयोग किए जिससे ऐसा रास्ता निकाल सकू कि मेरे चित्रो की गिनती भी उन आधुनिक कहे जाने वाले चित्रो मे हो साथ ही भारतीयता की झलक भी दिखाए और अगर विदेशी कला प्रदर्शनियो मे लगायी जांए तो अपनी अलग पहचान बनाए तथा चित्र स्वयं इस बात की अभिव्यक्ति कराएँ कि हम भारतीय है।''

भारतीय कलाकारो ने उन्ही प्राचीन परम्परागत चित्रों के विषय के आधार पर चित्रो को नए ढंग से प्रस्तुतिकरण करके उन्हे आधुनिक कला का रूप दिया है।। विशयों की हू–ब–हू आकृतियों को न लेकर उनको प्रतीकों के रूप मे लिया है। जैसे उदाहरण के लिए शिवजी को चित्रित करना है। तो त्रिशुल, सर्प, चाँद, त्रिनेत्र, लिंग आदि के प्रतीको का संयोजन किया है तो शिवजी का सांकेतिक आभाष कराते है इसी तरह विष्णु को चित्रित करने के लिए शंख, कमल,

चक्र, गदा, उनके वाहन गरूड पक्षी आदि का समावेष किया है। मुख्य विषय से सम्बन्धित चिन्हो को ही लेकर चित्रों की संरचना की है।

चित्रो के विषय पौराणिक होते हुए भी आज के वैज्ञानिक युग मे भी उनका महत्व है। भारतीय संस्कृति मे जिन वस्तुओं को सम्मानित माना है तथा मानव जीनव मे उनका कितना योगदान है, का सकेंत मिलता है। हमे आज भी उसे समझना चाहिए तथा उसका आदर करना चाहिए। जैसे 'सूर्य' जीवन और शक्ति का प्रतीक है 'वृक्ष पूजन' वृक्ष हमारे जीवन मे कितने उपयोगी वस्तु है, उसकी रक्षा करनी है, 'नाग पूजन' आदि अन्य जीव जन्तुओं से प्रेम करना है। विष्णु के अवतार आदि जैसे विषय मनुष्य को आदर्श और सत्य का रास्ता प्रदर्शित करते है जिससे मनुष्य अपने सही धर्म और कर्तव्य को समझ सके। बहुत से विषय पौराणिक होते हुए भी दूसरे धर्मो के लोगो ने भी अपनाया है, क्योकि पौराणिक के साथ–साथ उनमें कलात्मक अभिव्यक्ति है, अंग–भगिमा, एकरूपता तथा अलंकरण है, जो आधुनिक कला मे भी व्यक्त होते है। उदाहरणार्थ गणेश, हाथी और मनुश्य की आकृति स्वयं मे एक अंग–भंगिमा की हुई। कलात्मक अभिव्यक्ति है। इसलिए इनकी आकृति को हिन्दू धर्म का मांगलिक चिन्ह ही मान कर नही खरीदते बल्कि इसकी कलात्मक आकृति की रचना से आकर्षित हो कर भी खरीदते है। इसी तरह शेषनाग के अनेक सिर, देवी देवताओं की अनेक भुजाएं कला का ही नमूना है, जो अलंकरण के साथ–साथ यथार्थ रूप को काल्पनिक रूप दे कर उसे रचनात्कक बनाता है। कला द्वारा धर्मशास्त्रो कों विश्लेषित करते चित्रकारो की श्रृंखला में प्रसि चित्रकार स्व0 श्री रामकिशोर यादव जी के चित्रो मे धर्म और शास्त्रो से सम्बन्धित सारी विशेषतांए मिलती है। क्योकि इनके चित्रो को मैने स्वंय गहराई से अध्ययन किया है। ये मेरे शोध का विषय भी है। इनके पौराणिक व धार्मिक चित्रो मे से एक चित्र ''गणेश'' व बारह राशियां को मैने यहॉ प्रस्तुत किया है। जिसमे गणेश और प्रतीक रूप मे राशियों को दर्शाया गया है। जिसमे गणेश के चार हाथ दिखाये गये है ऊपर वाले हाथ में कमल का पुश्प तथा बाये में शंख दिखाया गया है। पैरो के दोनो ओर क्रमशः चूहा और सर्प दिखाया गया है। चित्र मे सबसे नीचे बारह राशियों के प्रतीक दिखाये गये है।

एक ओर चित्र जो हमारे धर्मशास्त्र महाकाव्य रामायण से सम्बन्धित है। रामकिशोर के चित्र रामायण में रामकिशोर ने प्रत्येक घटना को अपने चित्र मे उतारे का सफल प्रयास किया है। चित्र मे रावण के 10 मुख व बीस हाथो का चित्रण है। सीता स्वंयवर में धनुष तोड़ते राम तथा उसके बाद की क्रमवत धटना दशाई गई है। सोने के हिरण के पीछे कमान चढाते श्रीराम, सीता का हिरण भ्रममात्र बताते श्रीराम, रावण द्वारा जटायु वध, केवट की नाव मे भगवान श्रीराम, सीता व लक्ष्मण, रावण की लंका मे आग लगाते हनुमान, संजीवनी बूटी, सहित सुमेरू पर्वत को उठाकर लाते राम भक्त हनुमान आदि घटनाओ का संयोजन अदभुत है।

कलाकार रामकिशोर के अनुसार कला की उपयोगिता पर उसका मूल्यांकन नही किया जा सकता । वास्तव मे कला, के लिए ही है। क्योकि अगर उपयोगिता की दृष्टि से देखा जाएगा तो वह व्यवसायिक कला हो जाती है पर मैं इस तथ्य से थोडा भिन्न हूँ। मै भी अपने चित्रो में वही भाव पैदा करता हूँ जो ललिक कलाओं मे विद्यमान रहते है इसके साथ–साथ अगर ऐसी जिज्ञासा पैदा कर दी जिससे हर आम व्यकित को उसके आनन्द की अनुभूति हो सके तो लागो के मान मे कला के प्रति अधिक रूझान पैदा हो सकता है और इस तरह कला संग्राहालयों की सम्पत्ति न होकर आम जनता के नीचे पृथ्वी पर रंग बिरंगे फूलो से लहलाते हुए पौधे, मनमोहक संगीत लिए झरने, नाचती इठलाती नदिया चहचहाते हुए पक्षी, मंद–मंद गति से बहने वाली षीतल हवा के रूप में सौन्दर्य को बिखेर दिया है। जिसका रसास्वादन करने के लिए कोई अमीरी–गरीबी की सीमा नही है। फिर कला ही क्यों अमीर लोगो तक ही सीमित रहे, आम आदमी भी कला चित्रो को देखकर आनन्द की अनुभूति पा सके। चित्र के विषय को समझ लेने से आनन्द की

अनुभूति पा सके। चित्र के विषय को समझ लेने से आनन्द नही मिलता, बल्कि उसके रंग और रूप के मेल से जो सौन्दर्य बोध होता है वही हृदय को स्पन्दित की आनन्द देता है जैसे मधुर संगीत की धुन शब्द रहित होकर भी हृदय को आनन्द से भर देती है।

भारतीय कला हमारी पारम्परिक व प्राचीन भारतीय संस्कृति का आईना है। यह आत्माभिमान इस देश की अन्तः आत्मा मे समाहित है। उसका सौन्दर्य सदैव दार्शनिक जीवन के प्राथमिक रूप के साथ बढता है, उसका हृदय प्रकृति के साथ व्यवसायिक संसार के रहस्य को समझता है जिसका एक पहलू या रूप व्यक्ति है। यह भली–भाँति जाना जाता है कि वेदों और पुराणो ने भारतीय जीवन सम्यता और धर्म की नीव को प्रतिपादित किया है। कुछ करने के लिए व्यक्ति के लिए ज्ञान और कर्म अपनी अहम भूमिका रखते है। और ध्यान संसार और जीवन के अनगिनत रहस्मय विचारों को ढूढता है, यह प्रवाह भीतरी मन के बाहरी ओर नही जाता, ये आंतरिक उपेक्षा भारतीय कला का सिद्धांत है। इसका पहला उदाहरण साहित्य और धर्म से ज्ञात होता है परन्तु इसका अर्थ नही कला धर्म की दासी थी।

आहार निद्रा भय मैथुन च सामान्यमेतद् पशुभि नराणाम्।
धर्मो ही तेषामधिकों विशषो धर्मेण हीना पशुभिसमानः।।[3]

अर्थात आहार करना, निद्रा लेना, भयभीत होना, मैथुन सेवा करना ये चार बाते मनुष्य के समान पशु मे भी पायी जाती है। मनुष्य मे जो विशेषता है वह है धर्म, धर्म बिना मनुष्य पशु समान है। कलाकार को सदैव कला का सत्य रूप सृजित करना चाहिए जैसा कहा गया है कि–

''सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात न ब्रयात् सत्यमप्रियम्।
प्रिय न नानृतं ब्रूयादेश धर्मः सनातनः[4]

अर्थात वाणी के लिए कहा कि प्रिय सत्य बोलना चाहिए अप्रिय सत्य नही। उसी प्रकार सत्य और सुन्दर रूप ही बनाना चाहिए ऐसा सत्य रूप चित्र मे अंकित नही करना चाहिए जिसे देखकर दर्शक को दुख हो क्रोध या बुरे विचार आये, सुन्दर रूप बनाना चाहिए। कला निर्मित्त के लिए हृदय की स्वच्छन्दता मन की एक्रागता, निष्ठा और पवित्रता की नितान्त आवश्यक है।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, मानव जीवन के प्रमुख चार पुरूषार्थ कहे जाते है। वास्तव मे इन्ही के आधार पर चलने वाला जीवन ही सम्पूर्ण जीवन अर्थात जीवन की समग्रता कहा जा सकता है। धर्मशास्त्रों मे यत्र, तत्र, पुरूषार्थ, चतुष्टय का सम्यक विवेचन किया गया है। वेद, पुराण, स्मृतियॉ, धर्मसूत्र, उपनिषद, प्रायः समस्त धार्मिक ग्रन्थों मे इसकी झलक स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। यदि इस प्रकार कहा जाये कि पुरूषार्थ, चतुष्टय की नीव पर मानव जीवन की इमारत दृढ़ता से निर्मित्त हो सकती तो कोई अतिश्योक्ति नही होगी।

वास्तव मे धर्मशास्त्रों मे यह स्वीकार किया गया है कि चारो पुरूषार्थ अन्योऽन्याश्रित है। जहॉ हमारे धर्मशास्त्रों में धर्म व मोक्ष को अधिक महत्व प्रदान किया गया है। वही शेष दो गौण कहे जाने वाले पुरूषार्थो के भी नित्य पालन का निर्देश स्पष्ट शास्त्र दर्पण मे झलकता है। इन्हे जीवन के चार लक्ष्य अथवा चतुवर्ग नाम से अभिहित किया गया है। मनुस्मृति मे आता है।

एतच्यतुविंध विद्यात्पुरूषार्थ प्रयोजनम्।
अस्य नित्यमनुष्ठांन सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः।।[5]

धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष, इन चारो पुरूषार्थो, का मानव जीवन मे इस प्रकार पालन होना चाहिये जिससे कि इसका सामंजस्य बना रहे। श्रीमद्भागवत मे चारो लक्ष्यों का निर्वाह इस प्रकार करना बताया गया है कि धर्म का फल है मोक्ष, उसी सार्थकता अर्थ प्राप्ति मे नही है।, अर्थ केवल धर्म के लिये है, भोग विलास उसका फल नही है। भोगविलास का फल इन्द्रियों को तृप्त करना नही है। उसका प्रयोजन है जीवन निर्वाहन

धर्मस्यकृपयावर्गस्य नार्गोऽर्थायोपकल्पते।

कामंस्य धर्मकान्तस्य कामो लाभायहिस्मृतः।।
कामंस्य नोनिन्द्रयप्रीतिलीभो जीवेत यातवा।
जीवस्य तत्वजिज्ञासानार्थो यश्चेह कर्मभिः।।[6]

इस प्रकार चारो पुरूषार्थ, मानो श्रृंखलाब रूप से एक दूसरे मे बधे हुए है। जैसे जंजीर के कुण्डो का महत्व है। लेकिन यदि हर कुण्डे को अलग कर दिया जाये तो जंजीर का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार मानो धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष चारो कुण्डो से पुरूषार्थ, चक्षुष्टय की जंजीर निर्मित है। इन चारो का आपस में सामजस्य है प्रो0 काणे का मत है धर्म से सम्यक आचरण अर्थ से हित, काम से वासना, भावना तथा कलात्मक जीवन की संतुष्टि ओर मोक्ष से आत्मा की मुक्ति का अर्थ ग्रहण करना चाहिए।[7]

''वेदोऽखिलो, धर्ममूलम्''[8] यद्यपि धर्म का मूल स्त्रोत वेद माना गया है। तथापित प्रायः प्रत्येक धर्मशास्त्र मे धर्म की सम्यक विवेचना की गयी है कि 'धर्म' अक्षरों के दृष्टिकोण से जितना लघु प्रतीत होता है, उतना ही उसके अर्थ की गहनता है इस छोटे से शब्द मे विशालता समाहित होना इसकी विशेषता है।

' धर्म शब्द उन संस्कृत शब्दो मे है जिनका प्रयोग कई अर्थो मे होता आया है यह शब्द अनेक परिवर्तनो एंव विषयों के चक्र मे घूम चुका है। ग्वेद की चाओं मे यह शब्द या तो विशेषण के रूप में या संज्ञा के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। अथर्ववेद मे धर्म शब्द का प्रयोग धार्मिक क्रिया संस्कार करने से अर्जित गुण के अर्थ में हुआ है।

'त' सत्यं तपो राष्ट्र श्रमों धमस्य कर्मच।
भूतभविष्यदुच्छिष्टे वीर्य लक्ष्मीबलं बले।।[9]

ऐतरेय ब्राह्राण मे धर्म शब्द सकल धार्मिक कर्तव्यों के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। वेदो मे प्रयुक्त अनुशासनों के अनुसार चलना ही धर्म है।

धर्म शब्द की व्युत्पत्ति 'धृ' धातु से 'मनु' प्रत्यय जुडने पर निष्पन्न होती है।[10]

धर्म का अर्थ धारण करने से है। 'धृ' धातु से निर्मित होने के कारण भी धर्म का अर्थ धारण करना है। जो धारण करना है वही धर्म है।

अलग–अलग नीतिकारो विचारको, दार्शनिको व धर्म शास्त्रियों ने धर्म का विश्लेषण करते हुए अपने–अपने मतानुसार इसे भिन्न–भिन्न अर्थ बताये है। कही 'अहिसां परमो धर्मः' का नारा परोपकार को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म की मान्यता प्रदान की जाती है मनु के आचारः परमो धर्मः स्वीकार किया है अपने –अपने वर्ण के अनुसार कर्तव्य धर्म को कर उसी के लिए बलिदान हो जाना भी धर्म ही कहा गया है ''स्वधमे निधंन श्रेय[11] कहकर श्री कृष्ण ने इस बात की सत्यता प्रमाणित की है कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म गूढ रहस्य को लिए हुए एक ऐसा शब्द अथवा तत्व है जिसकी गहराई को मापना सहज सम्भव नही है। वास्तविकता तो यह है कि जिस व्यक्ति ने जिस बात को अथवा तथ्य को उचित श्रेयस्कर व कल्याण प्रद समझा उसने उसे ही धर्म की संज्ञा दे दी। धर्म वह ज्योति स्तम्भ है जिसके आलोक मे चलने वाले कल्याण प्रद मार्ग, पर सरलता से गमन कर पाते है।

धर्म मे वास्तव मे धारण करने की क्षमता है। धर्म के बल पर ही मानो सब कुछ टिका है, प्रकृति भी धर्म का अवलम्ब लेती है। इसी तथ्य के अनुसार जैन सम्प्रदाय के उदभर विद्धमान ही हेमचन्द्र ने कहा कि इतनी बडी विशाल और विश्व की एकमात्र आधार भूमि पर वसुन्धरा जो इस निरालम्ब, निराधार, शून्य आकाश मे सुस्थिर हो रही है, इसमें धर्म से अन्य कोई भी कारण नही है। समुद्र जो इस पृथ्वी को अपने अन्दर डुबा नही लेता और मेघ जो इसे सींच–सींच करके भरा करता रहता है। यह सब प्रभाव भी एक मात्र धर्म का ही है। यह बात ध्रुव है–

निरालम्बा निराधार विश्वाधारो वसुन्धरा।
भच्चा वष्ठिते तत्र धर्मादन्यन्न कारणम।।[12]

मे धर्म अभ्युदय का दूसरा नाम है प्रायः हर व्यक्ति की यह आकांक्षा रहती है, कि वह उन्नति के चरम शिखर पर आरूढ हो, इसी अभ्युदय हेतु वह धर्म के मार्ग का अनुसरण करता है। क्योकि वास्तविक उन्नति धर्म मार्ग का अनुसरण ही है। धर्म पालन मे कठिनाई अवश्य अनुभव होती है लेकिन कल्याण कारक मंगलयम उन्नति का मार्ग अवश्य खुल जाता है, श्रीमद्भगवत् गीता मे आता है।

'यत्त्दग्रे विषमिव परिणामे अमृतोपमंय'[13]

आरम्भ मे भले ही विषपान करना पडे लेकिन परिणाम जरूर अमृतमय होता है विषपान करके अमृत उगलना एक धर्म परायण व्यक्ति की स्थिति हो सकती है। व्यक्ति का यह स्वभाव होता है कि अपनी प्राप्त परिस्थिति से सदा उच्च परिस्थिति को उन्नति का जो मुख्य साधन है वही धर्म है, इसके विपरीत फल वाला जो अवनति का कारण है वही अधर्म है।

प्राचीन से आधुनिक तक के सफर मे कलाकार चित्र सृजन मे धर्मशास्त्रो को भी चित्रार्थ करने मे तल्लीन है। ''नवागंतुक चित्रकार'' ने भी अपनी प्रायोगिक कला मे प्रशिक्षित होने के साथ–साथ अपनी परम्परागत संस्कृति को आत्मसात कर रहे है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आज भी कला की नीव हमारे धर्म शास्त्र ही है।

सन्दर्भ

1. अग्रवाल गिर्राज किशोर कला और कलम पृ0सं0–**157**
2. अग्रवाल गिर्राज किशोर कला और कलम पृ0सं0–**29**
3. किरण प्रदीप आकृति पृ0सं0–**16**
4. कुमार शिव श्रोत्रिय सुखदेव रूपप्रद कला के मूल आधार पृ0सं0–**56**
5. कोशिक मधु कला चिंतन
6. गुप्त जगदीश भारतीय कला के पदचिन्ह 1969
7. गैरोला वाचस्पति भारतीय चित्रकला 1963
8. झा चिरंजी लाल भारतीय चित्रकला का इतिहास–गाजियाबाद 1969 पृ0सं0–**123**
9. टैगोर रविन्द्र नाथ 'मानसी' रविन्द्र रचनावली– खण्ड–5 पृ0सं0–**36**
10. डे शैलेन्द्रनाथ भारतीय चित्रकला की प्रति इलाहाबाद।
11. दा रायकृष्ण भारत की चित्रकला वाराणसी 1939